Chap-3

तृतीय अध्याय

गुजरात के मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में प्रतिबिम्बित पारिवारिक जीवन

HANSA MEHTA LIBRARY
M. S. University of Baroda

परिवार सामाजिक जीवन की महत्वपूर्ण इकाई है, विशेष रुप से भारतवर्ष में पारिवारिक सम्बन्धों का ताना-बाना पारम्परिक रुप से अत्यधिक मजबूती से बुना गया है और प्रत्येक परिवार के सदस्य एवं सम्बन्धियों की संख्या भी बहुत अधिक होती है। इसीलिए भारतीय संस्कृति की विशेषता संयुक्त परिवार प्रणाली है। मध्यकाल में भी इस प्रथा के दर्शन होते हैं। जी.एस. धुर्ये के मत से "मध्ययुगीन समाज में संयुक्त परिवार की व्यवस्था रही है।"[1] यह परिवार ही संस्कृति की बेल को आगे बढ़ाने वाला है। परिवार की परिकल्पना और उसके उत्तरदायित्वों को वहन करने के कारण ही मनुष्य पशुओं से श्रेष्ठ माना गया है। संसार के अन्य प्राणियों में परिवार की संकल्पना लगभग नहीं है। साहचर्य की भावना भी उसमें क्षणिक होती है, तथा संबंधों का भी मर्यादापूर्ण निर्वाह नहीं होता। मनुष्य अपने विशिष्ट गुणों के कारण संबधों का निर्वाह एक लम्बे समय तक कर सकता है। संयुक्त परिवार की प्रथा के मूल में भी यही प्रवृत्ति विद्यमान है। संयुक्त परिवार में एक छोटे से समाज के दर्शन मिल जाते हैं।

गुजरात के मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में उपलब्ध हुए, पारिवारिक जीवन से सम्बन्धित संदर्भों को विवेचन सौकर्य की दृष्टि से चार भागों में बाँटा गया है।

---

1. कास्ट एण्ड रेस इन इण्डिया - जी.एस.धुर्ये, पृ. 176

(अ) विविध पारिवारिक सम्बन्ध तथा अन्य संबंध

(आ) पारिवारिक जीवन के संस्कार

(इ) विविध त्यौहार

(ई) शिष्टाचार अभिवादन, अतिथि-सत्कार आदि की रीति-नीतियां

विविध पारिवारिक संदर्भों का समावेश मध्यकालीन सन्तों के काव्य में अप्रत्यक्ष रुप से प्रभु भक्ति एवं गुणगान के सम्बन्ध में किया गया है। जबकि 'प्रवीणसागर' में प्रेम व्यापारों के अन्तर्गत विविध चित्र दृष्टिगत होते हैं। यद्यपि संत विरक्त रहे हैं मगर माना यही जाता रहा है कि उनकी संतई केवल मोक्ष कामी होती थी, किन्तु यह सत्य नहीं है। संतों ने व्यक्तिगत जीवन को निर्लिप्त रखा था - बाह्य चकाचौंध से उनका लगाव नहीं था, लेकिन समाज को दिशा-निर्देश देने का, उसे सत्पथगामी बनाने का और पारिवारिक जीवन की बुराईयों को निरस्त कर सात्विक जीवन जीने की प्रेरणा देने का महत् उद्देश्य उन्होंने अपने समक्ष रखा था - वे समाज निर्पेक्ष नहीं थे। उन्होंने स्थान-स्थान पर अपनी साखियों, पदों और दोहों में पारिवारिक जीवन के चित्र प्रस्तुत किए हैं, इन्हें हम यथा स्थान देखेंगे।

(अ) विविध पारिवारिक सम्बन्ध तथा अन्य संबंध :

अधिकांशतः परिवारों में मुखिया पिता हुआ करता था। परिवार में सामान्यतया पिता, माता, पुत्र, पुत्री, पुत्र-वधु, पुत्र-संतान, पिता के भाई, बहन आदि का समावेश हुआ करता था। पारिवारिक जीवन में सर्वाधिक महत्व पिता का ही था। परिवार के सभी सदस्य उनके सुझावों पर उचित ध्यान देते थे।

महत्वपूर्ण कार्यों से पूर्व पिता की आज्ञा लेना आवश्यक समझा जाता था , जिससे कुल की इज्जत बनी रहे। कितनी बातें ऐसी होती थीं, जो पहले माता को बताई जाती थी, और यही पिता की आज्ञा लेने का एकमात्र रास्ता था। माता का भी इस दृष्टि से काफी मान था, कि कुछ खास बातें पहले माता को बताकर उनके द्वारा पिता तक पहुँचायी जाती थीं।[1] पिता की आज्ञा का पालन करना पारिवारिक सम्बन्ध की दृष्टि से स्वीकार्य है ही, लेकिन इसमें भारती य संस्कृति में बड़ों के प्रति जो आदरभावना प्रकट होती है, इसके भी दर्शन होते हैं। पिता के नाम के आगे परम पूजनिय लगाना भी इसी विशेष आदरभाव का अभिसूचक है। आज वर्तमान युग में भी यही धारणा बनी हुई है, और पिता की आज्ञा का अनादर प्रायः नहीं किया जाता।

राज परिवार में राजा की आज्ञा परिवार के मुखिया के रुप में कम, राजा के रुप में अधिक मानी जाती थी। सामान्यतया राज परिवार के प्रत्येक सदस्य के कार्य विशेष के लिए राजा की अनुमति मंत्री के द्वारा ही प्राप्त होती थी -

---

1. प्रवीणसागर - संपा. गणपतिशंकर शास्त्री, लहर- 77/25

कीनी अरज अमात, कुमरि उक्त छितिपाल प्रति।

महाराज सुनि बात, यह प्रति-उत्तर दीन तब ॥ [1]

XXXXXX

कुमरी वरजो जाय, क्यों विदेश की जे गमन ।

..... सो अमात सुनि नृपयै आये, सुपनभेद कहि के समुझाये ॥ [2]

पिता के बाद परिवार में माता ही सबकुछ थी। गुजरात के मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में माता के लिए प्रयुक्त शब्दों में महतारी, माई, मात आदि का प्रयोग मिलता है-

अब हौं कहा करों री माई । [3]

मात जसोदा करति आरती.... [4]

मॉ की मॉ जिसे नानी कहा जाता है, कृष्णदास ने 'पटिला' नाम की नानी का उल्लेख किया है-

पटिला नाम लाल की नानी तिनि सारी जरतारी, दिन्ही सरस पचलरी माला ।[5]

माता, पिता के अतिरिक्त गुजरात के मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में पुत्र के लिए लाल[6], सुत[7], लला आदि जबकि पुत्री के लिए लली शब्द का प्रयोग हुआ है -

कुँवरि लली की बरस-गाँठि है सब ब्रजनन सरसानें ॥ [8]

मानवीय राग-द्वेष, परिवार के विभिन्न सदस्यों की एक-दूसरे के प्रति भावनाएँ देशकाल निरपेक्ष होती है। परिवारों में जहाँ एक ओर कुछ सदस्य अपने कर्तव्यों का पालन नहीं करते तो दूसरी ओर माता-पिता अपने बच्चों के लिए अत्यधिक संवेदनशील भी हो सकते हैं। इसीलिए हठीली पुत्रियों की हठवादिता के समक्ष, पिता का निष्ठुर बना रहना स्वाभाविक नहीं था। 'प्रवीणसागर' में किए गये वर्णन के अनुसार प्रवीण के विवाह का वचन राजा नीतिपाल ने कुराबाद के राजा को दिया था, किन्तु उस पर प्रवीण के द्वारा अपनी अनुमति प्रकट करने और कौमार्य व्रत धारण करने की प्रतिज्ञा लेने के कारण राजा नीतिपाल पुत्री

1. प्रवीणसागर -संपा. गणपतिशंकर शास्त्री, लहर- 52/4
2. वही - लहर- 52/5,6
3. कृष्णदास- संपा. ब्रजभूषण शर्मा, पद सं. 176
4. वही - पद सं. 911
5. वही - पद सं. 854
6. वही - पद सं. 210
7. वही - पद सं. 891
8. वही - पद सं. 897

प्रेम में वश होकर प्रवीण की सभी बातों को स्वींकार कर लेते हैं।[1]

इन संबंधों के अतिरिक्त भाई-भाभी, बहिनी, काका-काकी, फूफा-फूफी, मौसा-मौसी - जिसका संबंध भी परिवार में अत्यंत महत्वपूर्ण माना गया है, सभी का उल्लेख हुआ है-

भूप अनुज रणजीत तिहि, आप बुलाये राह ।। [2]

XXXXXX

नेमा रेमा और सुरेमा भाभी अति सुखदाई .....

मामा श्री जसुवंत जसोधर....

सानदा आनंदा फूली तिनि...

बडीय माइ रोहिनी सलौनी....

जसुदेवी जसुरुपा दोऊ मौसी.... । [3]

XXXXXX

काकी भाभी बहिनी फूफा निज निज लै उरधार । [4]

इनमें परिवार के सदस्यों द्वारा पारिवारिक उत्सव के प्रसंगों पर उपहार के साथ-साथ दिए जाने वाली बधाईयों और आशीर्वाद प्रणाली का वर्णन किया गया है।

पारिवारिक जीवन में पति-पत्नि का संबंध सर्वाधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि उन्हीं के द्वारा संतति के रुप में परिवार आगे बढ़ता है। सामान्यतः पति-पत्नि व उनकी संतति को एक परिवार माना जाता है। संतों ने प्रायः इस रिश्तो को पति के प्रति पत्नी की एकान्तिकी निष्ठा व प्रेम का व्यवहार बताया है।[5] राजपूतों में बहुविवाह प्रथा होने पर भी इस जाति.की स्त्रियों में पति निष्ठा की भावना बलवती थी। राजपूत स्त्री अगर हृदय से जिस व्यक्ति को पति के रुप में स्वीकार कर लेती थी, तो उसी के नाम पर सारा जीवन व्यतित कर दिया करती थी। 'प्रवीणसागर' में किए गये वर्णन के अनुसार रससागर की विवाहिता पत्नी के विषय में पूर्ण जानकारी होते हुए भी कलाप्रवीण ने रससागर को हृदय से अपने पति के रुप में स्वीकार कर लिया था।[6]

पति-पत्नी का संबंध जहाँ एकनिष्ठता और आपसी संबंध के प्रख्यात है वहीं संदेह की एक दरार

---

1. प्रवीणसागर -संपा. गणपतिशंकर शास्त्री - लहर- 27/15 से 20
2. वही - लहर- 15/12
3. कृष्णदास- संपा. ब्रजभूषण शर्मा, पद सं. 854
4. वही - पद सं. 895
5. अक्षयरस - संपा. डॉ. कुँअर चन्द्र प्रकाशसिंह, जकड़ी-10
6. प्रवीणसागर -संपा. गणपतिशंकर शास्त्री, लहर- 27/15

से उसे बिखरते देर नहीं लगती। आज की बदलती स्थितियों में पुरुष के समान ही स्त्रियों को भी बराबरी का दर्जा दिया गया है। नारीमुक्ति एवं उसकी स्वतंत्रता की दृष्टि से इसे बुरा तो नहीं कहा जा सकता है, किंतु यही स्वतन्त्रता एवं स्वच्छंदता जब पारिवारिक मर्यादा की दिवारों को तोड़कर उच्छृंखलता की हदों को छूने लगती है तो जीवन रिश्ते का यह ढाँचा ही चरमरा उठता है। इस रिश्ते की अमर्यादित स्वतंत्रता को लक्ष्य करके दादू ने नारी पुरुष दोनों के चेताया है-

नारी पीवै पुरुष को पुरुष नारि को खाय।

दादू गुरु के ज्ञान बिन दोन्यूं गए बिलाय ॥ [1]

अखा ने स्त्री सहज चंचलता को लक्ष्य करके उनके इस दुर्गुण का चित्र प्रस्तुत किया है। आर्थिक समृद्धि के लिए परदेश में ही आयु व्यतीत करने वाले पुरुषों[2] तथा प्रिय को समर्पित शरीर को अन्य की सेवा में प्रस्तुत करने वाली कुलटाओं का उल्लेख किया है।[3] इस प्रकार की उच्छृंखलता पुरुषों में भी व्याप्त थी। 'प्रवीणसागर' में ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं जिससे स्पष्ट पता चलता है कि राजा एकाधिक विवाहित पत्नीयों के साथ-साथ अनेक रखैलें भी रखा करते थे।

नर इन्द्र सोर उद्वाहि नाफू, रनि पासवानि नृतिक की अपार ॥ [4]

प्रवीणसागर का नायक रससागर विवाहित होने पर भी कलाप्रवीण के प्रेम में रत है और उसे पत्र लिखने तथा उससे मिलने के उपाय खोजने तथा तद्नुसार प्रयास करने में ही अपना सारा समय व्यतीत करता है।[5] कहने का तात्पर्य यह है कि इस प्रकार के लग्नेतर बाह्य संबंधों की प्रचुरता मध्यकाल में दृष्टिगत होती है।

इसीलिए प्रवीणसागर में ग्रंथकार ने परस्त्री गमन पर चेतावनी दी है। जो यह पाप करते हैं वो नरकवासी बनते हैं, ऐसा व्यक्ति संसार में धिक्कारने योग्य है और कुल की लाज को डुबाने वाला होता है, ऐसे विचार व्यक्त किये गए हैं।[6]

गुजरात के मध्यकालीन सन्त कवियों की रचनाओं में अधिकांशतः कवियों का स्वर संसार के प्रति निराशा का रहा है। उन्होंने पारिवारिक संबंधों की व्यर्थता को घोषित कर उसे मिथ्या बताया है-

अखा संसारी जीव कू लुट लेन सूँ काम।

माता पिता सुत बंधवा सारा ठग का नाम ॥ [7]

---

1. दादूदयाल ग्रंथावली - संपा. परशुराम चतुर्वेदी, माया कौ अंग - 12/164
2. अक्षयरस -संपा. डॉ. कुँअर चन्द्र प्रकाशसिंह, आशा को अंग-53/7
3. वही - निष्ठ ज्ञान अंग-14/3 दुर्मति अंग-38/1
4. प्रवीणसागर -संपा. गणपतिशंकर शास्त्री, लहर- 23/2
5. वही - लहर- 15/2, 21/3-5, 26/25,32
6. वही - लहर- 84/29,30
7. अक्षयरस - संपा. डॉ. कुँअर चन्द्र प्रकाशसिंह, संसारी अंग-49/5

संत कवि माधवदास ने संसार की क्षणभंगुरता के साथ-साथ रिश्ते नातों की व्यर्थता को दर्शाया है -

तु देख ले आंधला... अंत काले किसी का कोई नाही ।।। [1]

दादू ने भी पारिवारिक संबंधों को महत्वहीन बताते हुए, परिवार, घर, जात आदि को झूठा साबित किया है -

दादू झूठी काया झूठा यहु परिवार ।

झूठा पित भात.... गृह दारा धन संपदा, पूत कटूंब परिवार ।। [2]

इसी प्रकार की बात मोरार साहब भी करते हैं। उन्होंने सभी संबंधों को स्वार्थाधारित बताकर जीवन की क्षणभंगुरता को प्रकट किया है-

माता तातसुत सगा सनेही .... खाख मसाना ।। [3]

अखा ने भी अप्रत्यक्ष रुप से स्वार्थवृत्ति का वर्णन करते हुए पुत्रों का साथ छोड़ जाना, ठगना और सांसारिक मायाभ्रम में पड़ जाने का वर्णन किया है -

घर न चले घरवासा भागा, उन्नभे खोज लीनी निज जागा।

मेरी लड़का कोई न मेरा, मोसे करे धर घेरा ।।

पांच पूत ठगारे घंर में, मेरी माया लगावे भरमें ।। [4]

सन्तों के काव्य में इस प्रकार के वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन समय में भी पारिवारिक वातावरण में अधिकांशतः स्वार्थ का ही बोलबाला रहा होगा।

---

1. गुजरात के सन्तों की हिन्दी वाणी - डॉ. अम्बाशंकर नागर, पृ. 57
2. दादूदयाल ग्रंथावली - संपा. परशुराम चतुर्वेदी, माया कौ अंग - 12/40,41,43
3. गुजरात के सन्तों की हिन्दी वाणी - डॉ. अम्बाशंकर नागर, पृ. 158
4. अक्षयरस - संपा. डॉ. कुँअर चन्द्र प्रकाशसिंह, अखाजी के पद-18/1,2

(आ) पारिवारिक जीवन के संस्कार :

भारतीय समाज में संस्कारों का विशेष महत्व है। जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त संपूर्ण जीवन को विविध संस्कारों की माला में गूँथा गया है, और उन्हें विधिवत आयोजनपूर्वक मनाया जाता है। इनके माध्यम से समाज के सामूहिक विकास का ध्येय भी सिद्ध होता है। इस संदर्भ में डॉ. सत्या गुप्त का कथन है कि – "पहले ये संस्कार जीवन में पथ प्रदर्शन का कार्य करते थे तथा जीवन के अनिवार्य अंग हो गए थे। संस्कारों के द्वारा ही जीवन में नियमितता तथा व्यस्तता आती है। वास्तव में हमारी संस्कृति का मुख्य ध्येय है – मनुष्य के विचारों का परिष्कार करना। परिष्कार करने हेतु ही हिन्दू धर्म में विशेषतः संस्कारों का समावेश है, जो जीवन के प्रथम चरण से आरंभ होते हैं और अंत तक रहते हैं।"[1] जैसे शिशु-जन्म तथा विवाह आदि अवसर हर्षोल्लास के निमित्त बनते हैं जबकि किसी सदस्य की मृत्यु परिवार को शोक-पारावार में निमग्न कर देती है। गर्भाधान से अंत्येष्टि तक की जीवन-घटनाएँ अनेक प्रकार की अलौकिक भयप्रद और कुछ अंशों में पाशव-धारणाओं से भी अनुबद्ध होती हैं। इन घटनाओं से भयावह और पाशव घटनाओं के निरसन, तथा व्यक्तित्व निर्माण में सोपान का कार्य करनेवाले जीवनावसरों की ओर सामाजिकों का उचित ध्यान दिलाने की कामना से, आर्य मनीषियों ने कुछ कर्मकाण्डीय विधि-विधान और प्रार्थनादि को संयोजित कर दिया था, जिन्हें धर्मशास्त्रीय शब्दावली में संस्कारों की संज्ञा प्रदान की गई। इन संस्कारों से विविध जीवन-प्रसंग, शरीर की दैनिक आवश्यकताओं एवं आर्थिक व्यापार के समान अनाकर्षक, चमत्कारहीन और जीवन के भावुक संगीत से विरहित होने से बच जाते हैं,[2] तथा ऐसे वातावरण में पोषित व्यक्ति समाज की महत्वपूर्ण इकाई बनकर उसके सर्वांगीण विकास में उचित योगदान करने की क्षमता प्राप्त करता है।

मनुस्मृति में जीवन-यापन की रीति मे दीक्षित होने के लिए संस्कार आवश्यक माने गए हैं। संस्कार न होने पर मनुष्य के पतित हो जाने की बात भी कही गई है।[3]

यह सिद्धांत भी प्रचलित था कि उत्पन्न होते समय प्रत्येक व्यक्ति शुद्ध होता है। अतः पूर्ण विकसित आर्य होने के लिए उसका संस्कार व परिमार्जन करना आवश्यक है।[4] मनुष्य अपने व्यक्तिगत धरातल पर इन संस्कारों को परिवर्तित करता हुआ समाज के लिए नए तथा उन्नत आदर्शों की प्रतिष्ठा करता है। मानसिक संकल्पों और विचारों का विकास करने की दृष्टि से संस्कारों का विशेष महत्व है।

---

1. खडी बोली का लोक साहित्य – डॉ. सत्या गुप्त, पृ. 32
2. हिन्दू संस्कार – डॉ. राजबली पांडेय, प्राक्कथन, पृ.5
3. मनुस्मृति – संपा. पं. गोपालशास्त्री नेने, श्लोक 10/20
4. हिन्दू संस्कार – डॉ. राजबली पांडेय, पृ.-34

विभिन्न गुध्यसुत्रों तथा स्मृतियों में संस्कारों की संख्या भिन्न-भिन्न है। यहाँ संस्कारों की नामावलि के विषय में 'मुंडे मुंडे मतिर्भिन्ना' की उक्ति चरितार्थ मिलती है। परंतु मुख्यतः सोलह संस्कार ही स्वीकार किए गए हैं। गर्भाधान, पुंसवन, सीमंतोन्यन, जातकर्म, नामकरण. निष्क्रमण, अन्नप्रासन, चूड़ाकर्म, कर्णविध, उपनयन, वेदारंभ, समावर्तन, विवाह, वानप्रस्थं, संन्यास तथा अंत्येष्टि।[1] इसमें से कुछ संस्कार आधुनिक युग में अपना अस्तित्व लगभग खो चुके हैं। देश व काल के परिवर्तन के अनुरुप आज भी भारतीय परिवारों में उपर्युक्त संस्कारों में प्रायः छः या नौ संस्कार किसी न किसी रुप मे मनाये जाते हैं।

गुजरात के मध्यकालीन हिन्दी कवियों की रचनाओं में इसमें से कई संस्कारों के बारे में उल्लेख तक नहीं है। कुछ खास जैसे जन्मसंस्कार, वेदारंभ, नामकरण, विवाह, अंत्येष्टि के ही कुछेक उदाहरण प्राप्त होते हैं।

<u>पुत्रजन्म संस्कार</u> : जन्म के उल्लासमय वातावरण का चित्रण कुछेक कवियों ने किया है। दंपति की चरम कामना पुत्र-प्राप्ति के रुप में अभिव्यक्त होती है। 'अपुत्रस्य गतिनास्ति' सिद्धांत के अनुसार पुत्र की कामना प्रत्येक भारतीय दंपति में रहती है। शास्त्रों के अनुसार भी पुत्र उत्पन्न करके ही व्यक्ति पितृ-ऋण से मुक्त माना जाता है।

'कृष्णदास' ने श्रीकृष्ण के जन्म के प्रसंग में स्त्रियों को हल्दी दही का छिड़काव करते और नंदराय से वस्त्राभूषण प्राप्त करते वर्णित किया है।

छिरके हरद दही पय बर तिय..... लेत हिय सचु पाई।[2]

संत प्राणनाथ ने भी मध्यकालीन जन्म-उत्सव को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है, कृष्ण के जन्म से सारी ब्रजभूमि पुलकित हो उठी है-

आज बधाई ब्रज घर-घर, प्रगट्या जी नंद कुमार ।
दूध दधिए.... रस बाजे गृह गृह ओछव थाए ।।[3]

'प्रवीणसागर' में भी पुत्र जन्म के अवसर पर समस्त नगरवासी आनंदित हो उठते हैं, स्त्रियाँ विविध प्रकार के वस्त्रों से सजकर मंगलगीत गाती हैं, और राजा की ओर से भेंट पाकर जय-जयकार करके नृत्य-गान भी प्रस्तुत करती हैं।[4]

---

1. भारतीय संस्कृति - शिवदत्त ज्ञानी - पृ. 95-96
2. कृष्णदास -संपा. ब्रजभूषण शर्मा, पद सं. 842
3. महामति प्राणनाथ मनीषा - डॉ. वीणा भगत, पृ. 87
4. प्रवीणसागर -गणपतिशंकर शास्त्री, लहर- 6/5

ज्योतिषी को बुलाकर उनसे जन्म की घड़ी को दृष्टिगत करते हुए, पुत्र का भविष्यकाल पूछे जाने का प्रचलन भी था। 'प्रवीणसागर' में प्रवीण[1] के और सागर[2] दोनों के जन्म के अवसर पर उनकी कुंडली पंडित से बनवाकर उनसे भविष्य कथन करवाने का वर्णन आया है, तथा इन ज्योतिषियों (पंडित) को घोड़ा, मणि-माणेक, वस्त्राभूषण और अपार द्रव्य भी दिया जाता था।[3] कृष्णदास ने भी कृष्ण जन्म के अवसर पर दान देने का उल्लेख किया है-

गाई दई गिनती नहीं जिनकी ठाठ चहुँ दिसि छाए।[4]

ढाढ़िने के बधावा गाने और बख्सीस प्राप्त करने का वर्णन भी है।[5]

करि सिंगार ढ़ाढ़ी अरु ढ़ाढ़िनि श्री ब्रजपति ग्रह गयो।[6]

कृष्णदास ने स्वयं को नंदराय का ढ़ाढ़ी बताया है-

नंद बड़ो जिजमान... मन में आन॥[7]

साथ ही, कुमारियों द्वारा चंदन से लिपे आंगन पर चौक बनाने, आरती सजाने, वस्त्रों को सजाने का वर्णन किया है।[8]

नामकरण : उसमें शिशु के जन्म के पश्चात् उसकी जन्म-लग्न पर विचार करनेवाले ज्योतिषी यह बता जाते हैं, कि उसका नाम किस राशि में रखा जाना चाहिए। किन्तु 'प्रवीणसागर' में महाराज प्रदीप अपने कुँवर का नाम पंडित के कहने के अनुसार मीन राशि में न रखते हुए अपनी इच्छानुसार रससागर रखते हैं।[9] राजा नीतिपाल भी अपनी इच्छानुसार राजकुमारी का नाम कला-प्रवीण रखते हैं।[10] 8/1, 7/10

इससे स्पष्ट होता है कि कुछ लोग लीक से बंधे न रहकर अपनी इच्छानुसार भी कार्य करते थे।

---

1. प्रवीणसागर -संपा. गणपतिशंकर शास्त्री, लहर- 7/3 से 9
2. वही - लहर- 6/6 से 27
3. वही - लहर- 6/28, 7/10
4. कृष्णदास- संपा. ब्रजभूषण शर्मा, पद सं. 854
5. वही - पद सं. 856
6. वही - पद सं. 854
7. वही - पद सं. 855
8. वही - पद सं. 854
9. प्रवीणसागर - संपा. गणपतिशंकर शास्त्री - लहर- 6/25, 8/1
10. वही - लहर- 7/10

कर्णविध : प्रायः पांच से छः वर्ष तक की अवस्था में कर्णविध संस्कार सम्पन्न हो जाता था। मध्यकालीन काव्य में पुरुषों को भी कानों में आभूषण पहने चित्रित किया गया है।[1]

कृष्णदास ने कान छेदने के समय बच्चे के हाथ में गुड़ की भेली रखने की प्राचीन परम्परा का उल्लेख किया है, जिससे इन परम्पराओं के पीछे छिपे बाल-मनोविज्ञान का भी पता चलता है।

आयो करन वेध दिन नीको, गुर की भेली हाथ दिवाई कियौ रोचन को टीको ।।[2]

विवाह :विवाह को गृहस्थ जीवन की आधारशिला सामाजिक व्यवस्था का एक अंग एवं सांस्कृतिक परम्परा कहा जा सकता है। इसीलिए मानव-जीवन के सोलह संस्कारों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण विवाह संस्कार है। भारतीय संस्कृति में विवाह द्वारा मनुष्य गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता है, तथा संतानोत्पत्ति द्वारा पितृ-ऋण से मुक्त होता है। इसलिए विवाह द्वारा काम तथा अर्थ की साधना के साथ-साथ अपने कर्तव्य का निर्वाह भी करता है। विवाह भाग्य तथा जन्म-जन्मांतर के संबंधों का परिणाम माना जाता है। आज भी विवाह संस्कार परम्परानुसार सम्पन्न किया जा रहा है। एक या दूसरी विधि द्वारा इसके एक या दूसरे प्रकार की स्वीकृति प्रत्येक समाज में पाई जाती है।

मनुस्मृति में ब्रह्म, देव, आर्ष, प्रजापत्य, आसुर, गांधर्व, राक्षस और पैशाच आठ प्रकार के विवाह बताए गए हैं।[3]

विवाह सम्बन्धी जिन मांगलिक कृत्यों या आचारों को निभाया जाता है, इसकी संख्या 'हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास' में चालीस से ऊपर मानी गई है। जैसे- वर-वधु गुण परीक्षा, वर पेक्षण (कन्या को देखने जाना), वाग्दान, मंडपकरण, पुण्याहवचन तथा नांदी श्राद्ध, वधूगृहागमन (कन्यापक्ष के घर वर पक्ष का जाना) मधुपर्क, विष्टारादन (वर को बैठने के लिए आसन देना), गौरी हर पूजा, स्नापन, परिधापन तथा संनहन, समंजन (वर-वधू को अंगराग लगाना), प्रतिसार बंध (कन्या के हाथ में कक्च बॉधना), वधू-वर निष्क्रमण, परस्पर समीक्षण, कन्यादान, अक्षतरोपण, कंकण-बंधन (वधू की कलाई में कंकण बाँधना), आर्द्रकाक्षत रोपण, तिलककरण, अष्टफलिदान, मंगलसूत्र बंधन, गणपति

---

1 प्रवीणसागर -संपा. गणपतिशंकर शास्त्री, लहर- 23/8

2. कृष्णदास- संपा. ब्रजभूषण शर्मा, पद सं. 887, 888

3. मनु स्मृति - संपा. गोपालशास्त्री नेने, श्लोक- 3/21

ब्राह्मयो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथाडासुरः ।
गान्धर्वो राक्षसस्चैव पैशाचश्चासृमोघमः ।।

पूजा, वधू वरयोत्तरीय प्रान्त बंधन (वधू और वर की चादरों का छोर बाँधना), लक्ष्मी- पार्वती-शची पूजा, बापन दान, अग्निस्थापन तथा होम, पाणिग्रहण, लाजाहोम, अग्नि परिणयन, अश्मारोहण गाथागान, सप्तपदी, मूर्द्धाभिषेक, सूर्योदीक्षण, हृदय स्पर्श, सिंदूरदान (सिंदूर लगाना - सुमंगली), प्रेक्षकानुमंत्रण, दक्षिणादान, गृह-प्रवेश, गृह प्रवेशनीय होम, ध्रुवारुंधती दर्शन, आग्नेय स्थालीपाक, त्रिशतव्रत, चतुर्थीकर्म, देवकोस्थान तथा मंडपोद्धासन। [1]

विवाह के पहले वाग्दान या सगाई की जाती थी, जिससे संबंध बँधता था। कृष्णदास ने वाग्दान में टीका आने का वर्णन किया है -

जसुमति सुत की करत सगाई ।
.... कुंकम कौ टीको पुष्पमाल गर में पहिराई ॥ [2]

गुजरात के मध्यकाल में बाल-विवाह के प्रचलन के निर्देश मध्यकालीन कवियों की रचनाओं में मिलते हैं।'प्रवीणसागर' में एतद्विषयक कई उल्लेख प्राप्त होते हैं-

तब नृप दुज दच्छा दई, भई कुमरि वय संघ।
नीतिपाल निज मन मुदित, सौधन लगे समंध ॥ [3]

X X X X X

सोय कुमार वय संघ हय, तरणतेज सु निहार ।
सोधन करे संबंध को, यह विचार चित धार ॥ [4]

X X X X X

रससागर महाराज, भई त्रयोदश वरष वय ।
नृप प्रदीप सुख साज, किय अदर उदवाह कौ। [5]

---

1. हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास (भाग-1) - डॉ.राजबली पांडेय, अं-5, पृष्ठ 132,133
2. कृष्णदास - संपा. ब्रजभूषण शर्मा, पद सं. 891
3. प्रवीणसागर -संपा. गणपतिशंकर शास्त्री, लहर- 7/15
   कवि रतन भावदान जी ने तेरह वर्ष की आयु में मेहरामन जी का विवाह बताया है।
   सोम सूर माधव शुकल, दशयि देव गुरुवार।
   स्वात्तिक गोधूलि समय, कियो लगन निरधार ॥
4. वही - लहर- 11/3
5. वही - लहर- 15/1
   महेरामन सिह कृत प्रवीणसागर का आलोचनात्मक अध्ययन - डॉ.महोब्बतसिंह चौहान - पृ. 49 (अप्रकाशित शोध प्रबंध)

इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि राजपरिवारों में भी वयःसंधि अवस्था अर्थात बारह-तेरह वर्ष की वय में पुत्र-पुत्रियों का विवाह कर दिया जाता था। विवाह इत्यादि निश्चित करते समय पुत्र-पुत्रियों की राय नहीं ली जाती थीं।[1] माता-पिता पुरोहित की सहायता से सामान्यतया, रुप, वय, कुल सम को ध्यान में रखकर विवाह संबंध निश्चित किया करते थे। राजा की ओर से राजपुरोहित को विवाह सम्बन्ध निश्चित करने का कार्य सौंपा जाता था।[2]

विवाह सम्बन्ध निश्चित करते समय मुहूर्त विचार का ध्यान रखा जाता था। इस अवसर पर उत्सव मनाया जाता था, और पुरोहित वर्ग को दान-दक्षिणा दी जाती थी।[3] इसके उपरांत विधि के अनुसार विवाह संस्कार हुआ करता था। मध्यकालीन गौरवग्रन्थ 'प्रवीणसागर' में तत्कालीन राजपूत वर्ग में प्रचलित विवाह विधि का सविस्तार वर्णन मिलता है, जो इस प्रकार है :

- विवाह के इकरार करते ही शुभ मुहूर्त देख ब्राह्मण के साथ लग्न पत्रिका भिजवाना। लग्न सम्बन्ध करवाने के लिए ब्राह्मण को दान देना।
- लग्न का उत्तमोत्तम मुहूर्त निकालना।
- लग्नोत्सव के आरम्भ में गणपति की स्थापना कर उसका पूजन किया जाता था।
- इसके उपरांत वर-वधू के हाथ में मदन-फुल बाँधा जाता था।
- मंडप बाँधकर आमंत्रण-पत्रिकाएँ भेजी जाती थी।
- बारात वधू पक्ष के नगर के निकट किसी स्थान पर ठहराई जाती थी और उसकी सूचना वधूपक्ष को देने के लिए घुड़सवार भेजा जाता था।
- बारात की अगवानी के लिए वधूपक्ष की ओर से कुछ व्यक्तियों को भेजा जाता था।
- नगर के समीप ही किसी वाटिका में जनवासा दिया जाता था।
- चुने हुए व्यक्तियों की लघु बारात ही नगर में प्रवेश करती थी।
- इस लघु बारात में कुछ दासियाँ, पुरोहित और वर के निकट संबंधी ही वर के साथ मंडप में प्रवेश करते थे।
- तोरण की वंदना कर वर के मंडप में प्रवेश करने पर उसकी सास अंतर्पट से आरती उतारती थी।
- पुरोहित के 'स्वस्ति-वाचन' आरम्भ करने पर श्वसुर जामाता को कुशआसन पर पैर रखवाता और तदुपरांत मधुपर्क विधि सम्पन्न की जाती थी।
- पुरोहित की ओर से वधू को उपस्थित करने का आदेश दिया जाता था।

---

1. प्रवीणसागर -संपा. गणपतिशंकर शास्त्री, लहर- 11/21
2. वही - लहर- 11/4,5,6
3. वही - लहर- 15/2

- 'चौरी' में वधू को वर के सम्मुख आसन पर बैठाया जाता था। इसके उपरांत दोनों एक-दूसरे को परस्पर हार पहनाते थे।
- पुरोहित मंत्रोच्चारण द्वारा पाणि-ग्रहण करवाता और गठबंधन किया जाता था।
- वैदिक विधि के अनुसार वेदी पर पंचभूत संस्कार सम्पन्न करके वैदिक मंत्रों के उच्चारण सहित अग्नि की स्थापना की जाती थी, और गृहसूत्र के अनुसार आहुतियाँ दी जाती थी।
- मंगल, प्रदशिक्षा, पुरोहित और सौभाग्यवती स्त्रियों द्वारा आशीर्वचन और न्यौछावर के पश्चात गणपति तथा गोत्र देवी की वंदना द्वारा विवाह विधि पूर्ण कर दी जाती थी।[1]
- विवाह विधि के दूसरे दिन प्रातः काल वर के पिता की ओर से इन्द्रदान विधि की जाती थी जिसमें पुरोहितों को दान-दक्षिणा देने के साथ-साथ विभिन्न प्रकार के बखशीस और इनाम-इकराम दिए जाते थे।[2] - 16/4, 5

विवाह विधि पूर्ण हो जाने के बाद बारात को एक महीने तक रोका जाता था, और बारातियों का खूब अतिथि-सत्कार किया जाता था। विदाई के समय राजा अपनी पुत्री को हाथी, घोड़े, रथ, पालकी, रत्न, सोने, चांदी के आभूषणों और कीमती वस्त्रों के साथ-साथ ब्राह्मण, कारभारी, कवि और अनेक दासियॉ आदि व्यक्ति भी दहेज में देते थे।[3]

इस समय वधू पक्ष के कुछ व्यक्ति बारात को दो-एक मंजिल तक पहुँचाने जाया करते थे। बारात की वापसी पर नगर में मांगलिक गीत गाए जाते थे, और शुभ मुहुर्त में ही बारात नगर में पुनः प्रवेश कर सकती थी।[4]

यहाँ पर उल्लेखनीय बात यह है कि बारात की वापसी पर किसी विधि या परिपाटी का उल्लेख कवि ने नहीं किया है, और वर-वधू को सीधे महल में पहुँचा कर एकाएक प्रसंग को पूरा कर दिया है।

अन्य कवियों की रचनाओं में मिले उल्लेखों में कृष्णदास ने विवाह से पहले वर-वधू को हल्दी-तेल चढ़ाने की प्रथा का वर्णन किया है। इसके पश्चात् स्नान कराया जाता था, इसी समय मढ़े के नीचे कंकण भी बाँधा जाता है।

कंकन कुँवर कन्हैया के.... न्हवावें सब ब्रज नारी ॥[5]

वैवाहिक वस्त्र मूल्यवान जरी आदि के होते थे, मणिमोतियों तथा रत्नों से जड़ित सेहरा बाँधा जाता

---

1. प्रवीणसागर -संपा. गणपतिशंकर शास्त्री, लहर- 15 संपूर्ण
2. वही - लहर- 16/4,5
3. वही - लहर- 16/6
4. वही - लहर- 16/7
5. कृष्णदास - संपा. ब्रजभूषण शर्मा, पद सं. 892

था –

दूल्हौं आजु वन्यौ ।

.... स्त्रवननि कुंडल कन्यौ ।। [1]

X X X X X

रचि काश्मीर दूकूल जरकस बुट्टिय, चरचे सु अत्र.....

.... भुज बंध कंकन सोहित । [2]

विवाह के पश्चात् कन्या की विदा का प्रसंग सर्वाधिक मार्मिक होता है। कृष्णदास ने विदा होती हुई राधा का चित्र खींचा है, जो अपनी मामी, बुआ, भाभी, बहन से मिलकर रोती है, और वृषभानु शीघ्र ही भाई को भेजकर उसे बुला लेने का आश्वासन देते हैं–

मिलि वृषभानु कहयौ..... बस यह ब्रज कौ त्यौहार ।।[3]

विवाह के साथ–साथ कन्या को दहेज देने की परम्परा प्राचीनकाल से ही चलती चली आ रही है। पौराणिक ग्रंथो में भी धन–संपत्ति, वस्त्राभूषण आदि का दहेज रुप में देने का उल्लेख है। ऊपर आए वर्णन में 'प्रवीणसागर' में भी दहेज देने की प्रथा का समर्थन होता है। कृष्णदास ने वृषभानु द्वारा राधा को गोधन का दहेज देने का वर्णन किया है, जो आभीर संस्कृति के अनुरुप समृद्धि का प्रतीक था –

गोपनि के गोधन अति नीकी.....

..... चलत चपल झनकार ।।[4]

जबकि मध्यकालीन सन्त कवि अखा की रचना में इस्लामी विवाह–पद्धति निकाह का उल्लेख मिलता है–

नेह बिरहा पहेलवान पियु का... नर सुँ जाय निकाह करे,....

... अखा! पढे की वहाँ क्या चली ।।[5]

बहु–विवाह प्रथा का प्रचलन भी हम आलोच्यकाल में देख सकते हैं। तत्कालीन राजाओं में बहु–पत्नीत्व प्रथा का प्रचलन हम पाते हैं। यथा राजा तथा प्रजा की लोकोक्ति के अनुसार यह सर्वथा स्वाभाविक है, कि राजेत्तर वैभव–सम्पन्न व्यक्तियों में यह प्रथा प्रचलित रही होगी।

'प्रवीणसागर' में राजपूत राजा अनेकों विवाहित पत्नियों के साथ–साथ अनेक रखैलों को भी रखा करते थे–

---

1. कृष्णदास – संपा. ब्रजभूषण शर्मा, पद सं. 892
2. प्रवीणसागर – संपा. गणपतिशंकर शास्त्री, लहर–15/19
3. कृष्णदास– संपा. ब्रजभूषण शर्मा, पद सं. 895
4. वही – पद सं. 895
5. अक्षयरस – संपा. डॉ. कुँअरचन्द्र प्रकांश सिंह, झूलणा– 102

नृप नीतिपाल औतार इन्द्र, माहेस भोज सेना समंद ।

नर इन्द्र सोर उद्वाहि नाकु रनि पासवानि नृत्तिक अपार ।। [1]

यह बहु-विवाह प्रथा और अनेक स्त्रियों से यौन सम्बन्ध रखना तत्कालीन सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतीक समझा जाने लगा था। 23/2

अंत्येष्टि संस्कार : मनुष्य जीवन का अंतिम संस्कार है, जो उसके जीवन के पश्चात सम्पन्न किया जाता है। अधिकांश गृह्य सूत्रों में अंत्येष्टि को संस्कारों में परिगणित नहीं किया गया है। एक तो शुभ संस्कारों के साथ इस अशुभ संस्कार को जोड़ना उचित नहीं समझा गया, दूसरे यह संस्कार जीवन के समाप्त होने पर किया जाता है, और इसके द्वारा जीवन का परिष्कार नहीं होता, परंतु पाराशर और बोधायमान गुह्य सूत्रों में इसका समावेश संस्कारों में भी किया गया है। प्राचीनकाल से ही यह संस्कार मानव संस्कृति का विशिष्ट अंग बना हुआ है। मृतक के प्रति सम्मान प्रदर्शित करके जीवित मनुष्य एक उदात्त परम्परा का पालन करते हैं। समाज के कल्याण के लिए भी यह उत्तर क्रिया अत्यंत आवश्यक है।

जिसका जन्म हुआ है, उसकी मृत्यु निश्चित है। सन्त दादू ने अपने काव्य में इसका बोध कराया है। उन्होंने मृत्यु संस्कार के दो मुख्य रूपों का वर्णन किया है। शव को जलाने और दफनाने का उल्लेख किया है-

दादू प्राण प्रयाण करि गया, माटि धरी रमसाण।

जालण हारे देखि करि.... कोई जाले केई... दादू जीवन नांहि ।। [2]

जन्म से लेकर मृत्यु के बाद तक के इन संस्कारों के वर्णन द्वारा मध्यकालीन गुजरात में प्रचलित संस्कारों का पता चलता है। अधिकांशतः राजन्य संस्कृति में होने वाले संस्कारों पर ही अधिक प्रकाश पड़ता है। आधुनिकता के कारण प्रायः रीति-रिवाज विलुप्त होते जा रहे हैं, परंतु जन्म, विवाह और मृत्यु के संस्कारो में आज भी प्राचीन परिपाटी का अनुसरण किया जा रहा है।

---

1. प्रवीणसागर -संपा. गणपतिशंकर शास्त्री, लहर- 23/2
2. दादूदयाल ग्रन्थावली - संपा. परशुराम चतुर्वेदी, काल कौ अंग - 25/60,61,62

(इ) विविध त्यौहार :

विभिन्न पर्व तथा उत्सव भारतीय संस्कृति का प्राण हैं। पर्वों द्वारा सामाजिक आनंद और उल्लास की अभिव्यक्ति होती है।

देवेन्द्र सत्यार्थी त्यौहारों की उत्पत्ति के विषय में कहते हैं, कि "मनुष्य प्रारम्भ से ही धर्मभीरु प्राणी है, और आरंभ में जब उसने प्रकृति को देखा तो पहले तो उसे आश्चर्य हुआ और साथ में भय की भावना भी उसके अंदर बैठ गई और वह प्रकृति की पूजा करने लगा। बाद में इसी पूजा ने व्रतों, त्यौहारों का रुप ले लिया।"[1] यह त्यौहार भारतवर्ष में ऋतुओं के परिवर्तन के साथ जुड़े हुए हैं। यदि ध्यान से देखा जाए तो जो त्यौहार जिस ऋतु में मनाया जाता है, उसी ऋतु के अनुकूल होता है। उदाहरण के तौर पर होली को ही लीजिए। यदि वह जाड़े ही में मनायी जाए तो इतने उत्साह से न मनाई जाए। इन विविध पर्वों के लिए तिथियाँ निश्चित हैं, और आज भी उन्हीं तिथियों, परम्पराओं तथा रीति-रिवाजों का पालन हो रहा है। सामाजिक-ऐतिहासिक दृष्टि से तो पर्व अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं ही, आध्यात्मिक दृष्टि से भी इनकी महत्ता अनुपेक्षणीय है। प्रत्येक पर्व किसी न किसी धार्मिक विश्वास के साथ जुड़ा हुआ है। इसलिए परम्परा के रुप में इन्हें मनाने में व्यक्ति धर्म का पालन करता हुआ पुण्य अर्जित करता है। लौकिक तथा सामाजिक जीवन की सुख-समृद्धि की अभिव्यक्ति भी पर्वों के माध्यम से होती है। सामाजिक रुप से आनंद मनाने के कारण मनुष्य समाज से जुड़ता है, और उसके प्रति उत्तरदायित्व को सुनिश्चित करता है। अपने जीवन की एकरसता को पर्वों के माध्यम से भंग करता है और तरो-ताजा होकर अपने कर्म में रत हो जाता है।

डॉ. सत्यागुप्त का कहना है कि "किसी भी देश की सजीवता और उसके जन-जीवन का ठीक-ठाक अनुमान उसके त्यौहारों और उत्सवों से ही लगाया जाता है , जो देश जितना ही अधिक उत्सवप्रिय होगा इतना ही अधिक सुखी-समृद्ध होगा। हमारा देश सदा से अपने उत्सव और त्यौहारों, मेलों के लिए प्रसिद्ध रहा है। यही उत्सवप्रियता उसके पूर्व-गौरव को सूचित करती है। इस समय हमारा देश पूर्ववत सुखी और समृद्ध तो नहीं, परन्तु फिर भी यह उत्सव-प्रियता का अवशेष ही है या परम्परा का निभाना ही है।"[2]

गुजरात के मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में भी कवियों ने त्यौहारों का वर्णन किया है, जहाँ कृष्णदास के काव्य में पुष्टिमार्ग के उत्सवों का वर्णन है, वहाँ अन्य ग्रन्थों में कई प्रचलित त्यौहारों के छिट-पुट वर्णन हमें

---

1. धरती गाती है-देवेन्द्र सत्यार्थी, पृ. 117
2 खडी बोली का लोक साहित्य - डॉ. सत्यागुप्त, पृ. 60

मिलते हैं। आधुनिक युग में प्रचलित त्यौहार मध्ययुग में भी ज्यों के त्यों प्रचलित थे। वरन् होली दीवाली जैसे उल्लास और उमंग को रुपायित करनेवाले पर्व आज राष्ट्रीय पर्वों का रुप धारण करते जा रहे हैं।

<u>फूलमंडली</u> : ग्रीष्म ऋतु में फूलमंडली का आयोजन मंदिरों में किया जाता है। इसका आयोजन चैत्र मास में ही प्रतिपादित होता है। पुष्टिमार्ग में वल्लभाचार्य ने इसे फूलमंडली नाम देकर महत्वपूर्ण पर्व बना दिया। इस अवसर पर मंदिरों में विशेष आयोजन किए जाते हैं। फूल-पत्तियों और केले के बक्कलों से बने फूलबँगले में ठाकुर जी को पधराया जाता है। राधा-कृष्ण फूलों के वस्त्राभूषण धारण करते हैं-

फूलनि की सारी पहिरे तन।

फूलनि की कंचुकी.... गूँथे फूल धन।

कृष्णदास ने कृष्ण को भी फूलों के वस्त्र से सजाए जाने की बात कही है-

फूलनि को टिपारो बन्यौ फूलनि कौ चोलना।

.... किंकनी सोभा सरसात।[2]

उन्होंने फूलमंडली की काव्यात्मकता का भी विशद् वर्णन किया है-

फूलनि के बने बिबिध बिछौना.... कोकिला बनी री।[3]

X X X X X

राइबेली छाजे छाजैं... फूलन के सोहत तकिया री।[4]

<u>हिंडोरा</u> : वर्षा के आगमन के साथ हिंडोरा का पर्व सम्पन्न किया जाता है। वस्तुतः यह लोकजीवन में पेड़ों की शाखों पर हिंडोरे डालकर झूलने की प्राचीन प्रथा से सम्बन्धित है। कृष्णदास ने कुंजो तथा प्रकृति की गोद के स्थान पर नंद के भवन में ही राजसी हिंडोरने का वर्णन किया है -

कनक के द्वै खंत्र राजत डाँडी चारि हीरा जरी।

पटुली पिरेजा साँचि मोती बिस्वकर्मा ए धरी।[5]

हिंडोरा झूलते समय उल्लास को प्रगट करनेवाले मधुरगान का उल्लेख भी किया गया है-

झूलत रंगीलों लाल संग.... गावत गीत रसाल बाजत

मृदंगताल.... तान तोरे॥[6]

---

1. कृष्णदास- संपा. ब्रजभूषण शर्मा, पद सं. 1007
2. वही - पद सं. 1005
3. वही - पद सं. 1002
4. वही - पद सं. 1010
5. वही - पद सं. 1053
6. वही - पद सं. 1057

हिंडोरे के उत्सव पर राधा–कृष्ण के श्रृंगार तथा गोपियों का उत्साह का भी दर्शनीय वर्णन मिलता है।[1]

<u>रास</u> : शरद ऋतु में मनाये जाने वाले इस पर्व में उल्लास तथा संगीत के तीनों अंग अपनी चरमसीमा पर होते हैं। श्रीकृष्ण नृत्य तथा नाट्यकला के प्रेरणास्रोत थे और इसी कारण उन्हें नृत्यगोपाल, नटनागर, नटवर आदि नामों से पुकारा जाता है।

कृष्णदास ने रासमंडल के बीच मुरली बजाते हुए कृष्ण तथा विभिन्न वाद्य–यंत्रों के साथ नृत्य का उल्लेख किया है –

"नागर नागरी उरप लेत षड़जादिक स्वहिं देत....

.... उरप तिरप लाग डाट अलग लगिनी ।। [2]

<u>देव प्रबोधिनी</u> : दीपावली के पश्चात् एकादशी को यह उत्सव मनाया जाता है। लोक व्यवहार में इसे देव उठान एकादशी (गुजराती में देव उठी अगि) भी कहते हैं। इस दिन सोये हुए देवों को उठाया जाता है। विवाहादि शुभ कार्यों में लग्न इस दिन से फिर से प्रारंभ हो जाते हैं। जो वर्षा में तथा श्राद्धों मे सम्पन्न नहीं होते। देवों को प्रबोधित करने के लिए उत्सव तथा रात में जागरण किया जाता है। कृष्णदास ने प्रबोधिनी व्रत का माहत्म्य तथा तुलसी की महिमा का वर्णन किया है–

प्रबोधिनी ब्रज कीजै नीकौ।

... व्रतनि कौ टीकौ। [3]

X X X X X

जा घर तुलसी करति निवास सो घर सदा कृष्ण कौ बास। [4]

<u>रथयात्रा</u> : यह उत्सव आषाढ़ शुक्ल द्वितीया को मनाया जाता है। आज भी इसका विशेष महत्व है, पुरी में जगन्नाथ जी की भव्य रथयात्रा निकाली जाती है।

कृष्णदास ने रथयात्रा के प्रसंग में विभिन्न वाद्यों के साथ गायन का उल्लेख किया है तथा कृष्ण की शरणागत वत्सलता का वर्णन किया है –

---

1. कृष्णदास – संपा. ब्रजभूषण शर्मा, पद सं. 1056,1054
2. वही – पद सं. 605
3. वही – पद सं. 929
4. वही – पद सं. 930

राजत रथ बैठे पिय प्यारी।.....

.... बाजत गावति हैं सिंध द्वारी ॥ [1]

X X X X X

देखौ भाई रथ बैठे गोपाल।....

.... कंस फेसी के काल ॥ [2]

<u>राधाष्टमी</u> : श्रीकृष्ण प्रिया देवी राधा का जन्मोत्सव भादों मास की शुक्ल पक्ष की अष्टमी को मनाया जाता है। कृष्णदास ने राधा के जन्म के समय विभिन्न वाद्य यंत्रों को बजाने का चित्रण किया है।[3] साथ-साथ राधा के अपूर्व सौंदर्य का वर्णन भी किया है।[4]

<u>अक्षय तृतीया</u> : यह उत्सव ग्रीष्म ऋतु में वैशाख के शुक्ल पक्ष की तृतीया को मनाया जाता है। इसे अखा तीज के नाम से आज भी मनाया जाता है। चंदन तथा अरगना आदि सुगंधित द्रव्यों का श्रृंगार इस उत्सव की विशेषता है। ग्रीष्म की उष्णता को दूर करने के लिए शीतलता पहुँचाने वाले इन द्रव्यों का उपयोग किया जाता है। कृष्णदास ने विस्तार से अक्षय तृतीया का वर्णन किया है। उन्होंने वृंदावन के कुंजों में रक्सखाना रचने का उल्लेख भी किया है।[5]

<u>गणगौर</u> : यह उत्सव भी चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की तृतीया को मनाया जाता है। यह कुँवारी कन्याओं द्वारा मनाया जाने वाला त्यौहार है। कृष्णदास ने गणगौर तीज मनाते राधा-कृष्ण का उल्लेख किया है:-

नंदनंदन श्री वृषभानुनंदिनी संग....

.... तीज गनगौरि त्यौहार मान्यो ॥ [6]

<u>सावन तीज</u> : श्रावण के शुक्लपक्ष में मनाया जाता है। स्त्रियों के सामूहिक रुप से झूला झूलने तथा विशेष श्रृंगार करने का विधान इस पर्व में है। कृष्णदास ने सावन तीज पर राधा-कृष्ण के हिंडोरे झूलने का विस्तार से वर्णन किया है, उन्होंने वर्षाऋतु में कालिंदी के तट पर प्राकृतिक सुषमा के बीच झूलने का उल्लेख

---

1 कृष्णदास-संपा. ब्रजभूषण शर्मा, पद सं. 1028
2. वही - पद सं. 1032
3. वही - पद सं. 896
4. वही - पद सं. 898
5. वही - पद सं. 1025
6. वही - पद सं. 1011

भी किया है।[1]

रक्षाबन्धन : प्राचीनकाल में ब्राह्मण अन्य वर्णों को राखी बाँधकर स्वस्ति वचन कहता था। आज भी इस परम्परा का पालन हो रहा है, परंतु मूल रुप में अंतर आ चुका है। आज बहनें-भाई को मंगल कामना करते हुए राखी बाँधती हैं।

पुष्टिमार्ग के कवि कृष्णदास ने यशोदा द्वारा राखी बाँधने का, विप्रों को दक्षिणा देने का तथा कृष्ण की आरती करने का वर्णन किया है -

राखी बाँधति हैं नंदरानी।....

.... लै आरती बारति हरि मुख पर अंग-अंग बिकसानी ।। [2]

दशहरा : विजयादशमी नाम से विख्यात यह पर्व मुख्यतः क्षत्रियों का माना जाता है, यद्यपि प्रत्येक वर्ण अपने-अपने ढंग से इसे मनाता है।

कृष्णदास ने इसको 'दसहरा'[3] कहा है। जबकि 'प्रवीणसागर' में दसरा कहते हुए नवरात्रि और दुर्गापूजा का उल्लेख भी किया गया है -

दसरा को दिन आज है, इत नवरात्री कीन।

दुगदिवि प्रसादते तब पद दर्शन लीन ।।[4]

दशहरे के दिन नए वस्त्राभूषण तथा जवारे धारण करने का महत्वपूर्ण विधान है। जवारे जौ के अंकुर होते हैं, जो शारदीय नवरात्र के प्रथम दिवस कलश की स्थापना कर बोए जाते हैं। कृष्णदास ने जवारे धारण किए कृष्ण सौंदर्य को वर्णित किया है-

---

1. कृष्णदास - संपा. ब्रजभूषण शर्मा, पद सं. 1049,1065,1066
2. वही - पद सं. 1074,1075
3. वही - पद सं. 906
4. प्रवीणसागर -संपा. गणपतिशंकर शास्त्री, लहर- 80/31

पाग पर पहिरैं, लाल जवारे। ....
.... अधिक छवि नासा-मोती सो है। [1]

दशहरे के अवसर पर शमीवृक्ष के पूजन का भी महत्वपूर्ण विधान है। इसका वर्णन भी किया गया है-

कुंजलता प्रफुलित जु भई हैं पंखनि शब्द सुहाए। [2]

वैसे तो, क्षत्रियों का त्यौहार होने के कारण अस्त्र-शस्त्र पूजन का विधान भी है, किन्तु कृष्णदास ने केवल श्रीराम का पाइ पूजने का उल्लेख किया है-

पाँइ तौ पूजिलै रघुनाथ।[3]

घर-घर लोग बधाईयां देने भी जाते हैं।[4]

<u>दीपावली</u> : दीपावली इस देश के प्रमुख त्यौहारों मे से एक है। दीपावली के लिए यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है, कि इसी दिन श्रीरामचन्द्रजी 14 वर्ष वन में रहकर अयोध्या आए थे। इससे अयोध्या दीपमालाओं से सजायी गयी तथा विभिन्न उत्सव हुए थे। उसी दिन की स्मृति में दीपावली का पर्व मनाया जाता है। वैसे तो, यह कार्तिकी अमावस्या के दिन मनाया जाता है, पर इसके उत्सव पाँच दिन तक चलते हैं। पहले दिन धनतेरस मनाई जाती है। दूसरे दिन नरक-चौदस, फिर बड़ी दीवाली, नया साल और भैयादूज मनाया जाता है। इन दिनों प्रत्यक हिन्दू स्नान कर नवीन वस्त्रों में सुसज्जित होकर एक-दूसरे से मिलते हैं। रात को लक्ष्मी पूजा होती है, तथा लोग दीपमालाओं से घर सजाते हैं।

कृष्णदास ने कृष्ण को स्नान-उबटन कर नए वस्त्र धारण करने का उल्लेख करते हुए यशोदा द्वारा भोजन के अनुरोध व निहाल होने के अतिरिक्त ब्रजनारियों के तृण-तोड़ने (नजर न लगे, इसलिए) की ओर भी संकेत किया है।[5]

'प्रवीणसागर' में द्वारमति में दीपावली के अवसर पर दीपोत्सव के दर्शन के लिए कुमार रससागर और मित्रों का जाना प्रदर्शित किया है-

हमें निकट नहिं बास, इतसे बहु अंतर रहे।
द्वारमति की आस, दीपोत्सव दरसन चहे॥ [6] 52/26

---

1. कृष्णदास- संपा. ब्रजभूषण शर्मा, पद सं. 908
2. वही - पद सं. 910
3. वही - पद सं. 912
4. वही - पद सं. 910
5. वही - पद सं. 914
6. प्रवीणसागर -संपा. गणपतिशंकर शास्त्री, लहर- 52/26

कृष्णदास ने भी दिपावली के अवसर पर दीपक सजाने, प्रत्येक घर में थापा रखने और मधुर स्वर में गाने का उल्लेख किया है-

बज्र घर-घर सब दीप साजत मंगलाचार बधाई....

.... आवति गावति गीत परम सुख पावत ।।[1]

<u>गोवर्द्धन पूजा</u> : गोवर्द्धन पूजा एक प्रकार से दीपावली का समापन समारोह है। इसी दिन कृष्ण ने आकाश के देवता इन्द्र के स्थान पर धरती के देवता गोवर्द्धन की पूजा का विधान किया।

कृष्णदास ने इन्द्र के कोप तथा कृष्ण द्वारा ब्रज की रक्षा के प्रसंग का वर्णन किया है। और बार-बार इस अवसर पर कृष्ण की वंदना की है।[2] उन्होंने गोवर्द्धन पूजा की रीति का भी वर्णन किया है-

गोवर्द्धन पर्वत पूजिये।....

.... मिठाई ग्वालिनी को बहु दीजिए ।।[3]

<u>होली</u> : फाल्गुन पूर्णिमा को मनाया जाने वाला होली का त्यौहार वर्ण-व्यवस्था के क्रम में कभी शूद्रों का रहा होगा, पर आज भारतीय संस्कृति की उन्मुक्तता और उल्लास को प्रगट करनेवाला यह एकमात्र त्यौहार है। सभी वर्ण होली के रंग के साथ समानता के स्तर पर आ जाते हैं। होली कुंठाओंको मुक्त करने का अवसर है।

होली का उत्सव प्राचीन मदन महोत्सव का ही रुपांतर है। इसलिए इस त्यौहार का प्रारंभ बसंत पंचमी से किया है। कृष्णदास ने चौंतीस पदों में बसंत के राग-रंग का वर्णन किया है।[4] कृष्णदासने इसे मदन महेच्छा कहकर हेमंत के समाप्त होने का उल्लेख भी किया है।[5] उन्होंने होली खेलने को तैयार राधा का चित्र प्रस्तुत किया है।[6] फाग खेलकर, होली पर, अपने आन्तरिक उल्लास का प्रगटन किया जाता है। कृष्णदास ने दो दलों का उल्लेख किया है-

खेलत फाग नंद कौ.,.,.. प्रगटहि होति दिखाई।[7]

---

1. कृष्णदास- संपा. ब्रजभूषण शर्मा, पद सं. 915
2. वही - पद सं. 918,921,922,923,924
3. वही - पद सं. 919
4. वही - पद सं. 940 से 974
5. वही - पद सं. 944
6. वही - पद सं. 945,978
7. वही - पद सं. 981

होली के अवसर पर अबीर चंदन और रोली का छिड़काव स्वाभाविक है। इसका उल्लेख कवियों ने कई पदों में किया है , साथ-साथ गालियों ना गाकर गारी गाने का संकेत दिया है-

चोवा चंदन छिरकहीं.... लालन संग। [1]

X X X X

लेहु अबीर अरगजा.... साँवरी इक गोरी।[2]

X X X X

खेल गुलाल अबीरन....गारि सुनें हसबो।[3]

X X X X

गारी देति सुहावनी इत सब गोपी नारि।[4]

कृष्णदास ने राधा तथा सखियों के हाथ में बाँस और फूल-डंडा का वर्णन किया है।[5] साथ-साथ कृष्ण को घेरकर मनचाही होली खेलने का भी उल्लेख है।[6] धमार खेलने आई गोपियों के विभिन्न रूप वेश धारण करने का भी उल्लेख किया है।[7] गोपियों द्वारा कृष्ण का स्त्रीवेश में श्रृंगार करने परंतु सीमा से आगे न बढ़ते हुए धमाचौकड़ी करने का वर्णन भी किया गया है।[8] ग्वाल बालों के द्वारा हो-हो-होरी की उद्घोषणा को भी वर्णित किया गया है।[9] कृष्ण का बलराम तथा ग्वाल बालों के साथ होली खेलने का उल्लेख भी मिलता है।[10] 'प्रवीणसागर' में भी फाग और तान टप्पा के उच्चारण के साथ मित्रगणों का परस्पर एक-दूसरे के अंग पर रंग भरी पिचकारी छोड़कर होली खेलना वर्णित है।[11] कृष्णदास ने गोकुल गाँव के चौक में होली खेलने का उल्लेख किया है।[12] इससे घर-आंगन व गलियों में कीच मचने का उल्लेख भी मिलता है -

कपूर की आँधी उड़ी आइ... सुख सरिता चली धाई।[13]

---

1. कृष्णदास- संपा. ब्रजभूषण शर्मा, पद सं. 992
2. वही - पद सं. 997
3. प्रवीणसागर- संपा. गणपतिशंकर शास्त्री, लहर 40/8
4. कृष्णदास- ब्रजभूषण शर्मा, पद सं. 992
5. वही - पद सं. 978
6. वही - पद सं. 977
7. वही - पद सं. 984
8. वही - पद सं. 987, 993
9. वही - पद सं. 978
10. वही - पद सं. 994, 995
11. प्रवीणसागर - संपा. गणपतिशंकर शास्त्री, लहर 40/12
12. कृष्णदास - ब्रजभूषण शर्मा, पद सं. 985
13. वही - पद सं. 950

होली के अवसर पर एक दूसरे की आँखों में, मुख पर रंग डालनेमें आनंद का अनुभव करते हैं। इसलिए कृष्णदास की गोपियों ने नेत्रों में अबीर और रंग न डालने का अनुरोध कृष्ण व उसके सखाओं से किया है।[1] कृष्णदास ने इस अवसर पर झूमक[2] और बसंतराग[3] गाने का वर्णन किया है। साथ-साथ चांचरि जो गीत गा-गाकर किया जाने वाले खेल तमाशा है, वर्णित हुआ है।[4]

<u>गरबा रास</u> : पूरे गुजरातभर में आधुनिक युग में नवरात्रि का महोत्सव मनाया जाता है। कृष्णदास ने मध्यकालीन रास-गरबा के प्रचलन का वर्णन किया है।

कृष्णदास ने कृष्ण के साथ गोपियों के नृत्य का वर्णन रासवर्णन के अंतर्गत किया है, जिनमें नृत्य के अंग-विक्षेप और पदसंचालन का उल्लेख किया गया है।[5] उन्होंने डांडिया-रास का उल्लेख भी किया है, जौ गुजरात के प्रसिद्ध गरबा लोकनृत्य के रुप में आज भी काफी प्रचलित है-

मिली जु डंडा रास खेलिए नंदराय की पौरि।
आनन्द सौं मन आइ रहयौ नवल किसोर किसोरि ।।[6]

<u>शिवरात्री</u> : यह महोत्सव फाल्गुन मास की त्रयोदशी को मनाया जाता है। 'प्रवीणसागर' में शिवरात्री के दिन बड़े महोत्सव की बात कही है।[7]

स्वर्ग में शिवजी के कैलाशधाम में मनायी जा रही शिवरात्रि में देवतागण अपनी पत्नियों के साथ उपस्थित हैं, साथ में सेवा में गण हैं। बड़े मधुर वातावरण में बाँसुरी, श्रृंगी, पिनाक के घोर नाद के बीच अनेकों मनोरंजन के बीच लोगों के बीच लोगों के शिवोत्सव में मस्त होने का उल्लेख किया गया है।[8]

अन्य वर्णन में सागर को पाने के लिए प्रवीण शिवरात्री के उत्सव के दिन शिवालय में मिलने के

---

1. कृष्णदास- ब्रजभूषण शर्मा, पद सं. 969
2. वही - पद सं. 978
3. वही - पद सं. 969
4. वही - पद सं. 980, 982
5. वही - पद सं. 645
6. वही - पद सं. 992
7. प्रवीणसागर - संपा. गणपतिशंकर शास्त्री, लहर 4/5,6
8. वही - लहर 4/10 से 22

लिए चलते हुए जा रही है, जब शिवरात्री का दिन आया तो यात्रा-समुदाय चार कोस तक फैल गया, लोग शिव-कीर्तन करने लगे, अनेक बाजे बजने लगे, सातों मित्रों को शिवरात्रि के दिन पूजन करते हुए प्रदर्शित किया गया है।[1]

कुछ त्यौहारों में आनंद और उल्लास से भरने के लिए आतिशबाजी भी की जाती थी। दीपावली, होली के अवसरों पर यह विशेष देखने को मिलता था-

आतशबाजी ए अखा, जानो सब संसार ।
सम्पते दिन गुजरे, फना होत नांहि बारा ।।[2]

पर्वोत्सवों, त्यौहारों की इस विवेचना से स्पष्ट है कि मध्यकालीन कवियों ने पर्वों का खास विश्लेषणात्मक वर्णन तो नहीं किया, किन्तु कुछेक कवियों के काव्य में आए हुए वर्णन से तत्कालीन समय में प्रचलित त्यौहारों के बारे में जानकारी अवश्य प्राप्त होती है, और इन त्यौहारों को धूम-धाम से मनाया जाता था, इसमें कोई आशंका नहीं है।

काव्य का विषय कुछ भी हो, किन्तु काव्य जीवन से पृथक नहीं हो सकता। जहाँ जीवन हो, वहाँ उसके आंतरिक उल्लास को व्यक्त करने वाले पर्वों और उत्सवों का चित्रण होना सहज स्वाभाविक और अवश्यम्भावी है। पर्व, त्यौहार, मनोरंजन, समाज के स्वस्थ होने के प्रमाण है और मध्यकालीन समय इसका आदर्श उदाहरण है।

अतः इससे स्पष्ट है कि गुजरात के मध्यकालीन कवियों ने भले ही कोई खास जानकारी या विस्तृत वर्णन त्यौहारों के बारे में नहीं किया, किन्तु सीमित वर्णन से भी तत्कालीन समय में प्रचलित त्यौहारों के बारे में प्रकाश अवश्य पड़ता है।

---

1. प्रवीणसागर - संपा. गणपतिशंकर शास्त्री, लहर 83/5 से 10
2. अक्षयरस - संपा. डॉ. कुँअर चन्द्रप्रकाश सिंह, तपास अंग- 6

(ई) शिष्टाचार, अभिवादन, अतिथि-सत्कार की रीति-नीतियाँः

प्रत्येक समाज के अपने विशिष्ट नियम होते हैं, जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलते चले आते हैं। लोकमानस उनकी उपेक्षा नहीं करता। जैसे माता-पितादि गुरुजनों की आज्ञा-पालन के सदृश ही उनके सम्मुख नतमस्तक होकर उनकी शुभेच्छाओं को प्राप्त करना पुत्रादि के लिए अति प्राचीन काल से काम्य रहा है। इसमें द्विविध भावनायें सन्निहित रहती हैं -गुरुजनों को स्वयं से पारिवारिक या सामाजिक महत्ता की दृष्टि से कनिष्ठ व्यक्तियों को सम्मान प्रदर्शित करते देखकर जहाँ आत्म-परितोष का अनुभव होता है, वहीं अभिभावकों के अन्तस में यह धारण बद्धमूल रहती है कि गुरुजनों के हृदय से निःसृत मंगलेच्छाएँ उनके दुःख-दर्दों का निरसन करती हुई सुख-समृद्धि प्रदान करती है। इस विनम्रता प्रदर्शन का परिधि विस्तार पारिवारिक जनों के समतुल्य अन्य सामाजिकों तथा राजकीय मर्यादा में श्रेष्ठ पदाधिकारियों के लिए होता हुआ समस्त समाज-व्यवस्था को आपूरित कर लेता है। विभिन्न मर्यादाओं के अनुकूल अभिवादन भी भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं।

भारतीय परिवार अपने अतिथि-सत्कार के लिए विख्यात रहे हैं। भारतीय संस्कृति की महत्वपूर्ण विशेषता ही अतिथि-सत्कार रही है। उसमें सदैव 'अतिथि देवो भव' की धारणा विद्यमान रही है। आतिथ्य सत्कार प्रत्येक गृहस्थ का कर्त्तव्य माना गया है। अतिथि-सत्कार में अपना सर्वस्व बलिदान कर देने वाले गृहस्थों के उदाहरणों की दृष्टि से पुरातन भारतीय संस्कृति का इतिहास बड़ा समृद्ध है। भारत में भ्रमणार्थ आये हुए विदेशी यहाँ से बड़ी मधुर स्मृतियाँ लेकर लौटे हैं तथा भारतीयों के आतिथ्य की उन्होंने भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

गुजरात के मध्यकालीन काव्य में भी एतद्विषयक कई उल्लेख प्राप्त होते हैं, जिससे तत्कालीन समय में व्याप्त शिष्टाचार की रीति-नीतियों विषयक जानकारी प्राप्त होती है। वस्तुतः संत कवि इस विषय मे प्रायः मौन रहे हैं, किन्तु राजन्य संस्कृति के वर्णन के प्रतीक ग्रंथों में जरुर शिष्टाचार की प्रणालियों के दर्शन होते हैं। 'प्रवीणसागर' में तो हिन्दू संस्कृति और फिरंगी संस्कृति एवम् अंग्रेजों की हिन्दू लोगों के प्रति आदरभावना के दर्शन भी एक-दो जगह किये गये वर्णनों से होते हैं। अतः मध्यकालीन गुजरात में व्याप्त अभिवादन, अतिथि-सत्कार की भावना के बारे में कुछ जानकारी हमें जरुर प्राप्त होती है।

प्रातःकाल उठकर स्नान कर देवार्चन करने का बहुत पहले से भारतीय समाज में क्रम था, उत्सवों के प्रसंग पर भगवान की स्तुति एवम् आरती कर वंदना करने की रीति का वर्णन 'प्रवीणसागर' मे आया है-

करि मज्जन नित प्रात, देवशेवा अनुमाने ।।[1]

X X X X X X

करी उत आरति बाल प्रवीण।

परी भवनाथ.... स्तुति छंद बनाया ।। ... बंदे चरण परवीण ।।[2]

ब्राह्मणों को पूज्य मानकर उनका सम्मान किया जाता था, उनको शुभ अवसरों पर दान देने की भी रीति थी।[3] ब्राह्मण के आशीर्वचन सदा फलीभूत होते हैं, इस प्रकार की भी मान्यता थी–

ता पुर में दुज रहत है.... राजद्वार सनमान ।।[4]

X X X X X X

इतनी कहि कीन्हें विदा, दुजन दान बहु दीन ।।[5]

X X X X X X

दिये वसन मनि माल हय, बिदा किये दुजदेव।[6]

X X X X X X

महाराज रीझ मनहंस, दूज द्वादस पुर इच्छा दहै ।।[7]

X X X X X X

मनंछा सदा पूरि हैं आपकी इश, यहै सत्य जानी हमें ब्रह्म आशीष ।।[8]

सम्माननीय व्यक्तियों के लिए नमो, नमन, नमस्कार आदि संबोधनों का प्रयोग किया जाता था। असाधारण व्यक्तित्व तथा लोक–कल्याण में संलग्न महापुरुषों की अभ्यर्थना इन्हीं शब्दों से होती थी। कृष्णदास ने गोवर्द्धन पूजा के संदर्भ में कृष्ण के लिए इन्हीं संबोधनों का प्रयोग किया है–

नमो देवेन्द्र दर्पहर श्री मुरारी।

.... गोप गोपीजन तापहारी ।।[9]

पूजनीय व्यक्तियों के प्रति कायिक अभिवादन प्रचलित था। प्रणाम, दंडवत, वंदन, हाथ जोड़ना, नत–मस्तक होकर झुकना, पैर छूकर वंदन करना आदि इसी भाव को व्यक्त करते हैं।

योगी, साधुओं, माता–पितादि[10] के चरणों में गिरकर अभिवादन करना, एक प्रकार से दण्डवत् प्रणाम का ही छोटा रुप था।

इसी से साम्य रखनेवाली वह अभिवादन प्रणाली थी जिसमें चरणों में गिरने के स्थान पर उन्हें

---

1. प्रवीणसागर – संपा. गणपतिशंकर शास्त्री, लहर 8/7
2. वही – लहर 27/13,14
3. वही –लहर 12/22-15/27
4. वही –लहर 7/11
5. वही –लहर 7/10
6. वही –लहर 6/28
7. वही –लहर 8/4
8. वही –लहर 27/25
9. कृष्णदास – संपा. ब्रजभूषण शर्मा, पद सं. 924
10. प्रवीणसागर – संपा. गणपतिशंकर शास्त्री, लहर 14/30

मात्र स्पर्श करके विनम्रता प्रकट की जाती थी। 'प्रवीणसागर' में योगी के पैर की वन्दना कुसुमावली द्वारा की जाती है, और यह क्रम नित्य था ऐसा ग्रंथकार ने बताया है, योगी द्वारा कुसुमावली को वेद मंत्र पढ़कर आशीर्वाद देने का वर्णन भी आया है–

उन पद बन्दन कीन, उन छंदन आशिष दई।[1]

X X X X X X

इहि विधि ब्रह्मसुता नित आवे..... बंदन करि नृपद्वार सिधावे।[2]

X X X X X X

कीन्हें सबीर नृप से निकट, नीतिपाल वंदन सुकरि। [3]

X X X X X X

सागर जाय समाज, किय वंदन गुरुजन जनक।[4]

प्रणाम करने की प्रणाली का भी प्रचलन था, मुख्यतः अपने से बड़ों को, सन्तों को इस रीति से अभिवादन करने का शिष्टाचार मिलता है। सन्त कवि दादू ने सिजदा (प्रणाम) का वर्णन किया है–

तब साहिब को सिजदा किया.... हिर्स हवो को मारि॥ [5]

जबकि 'प्रवीणसागर' में ग्रंथकार ने इस प्रकार का उल्लेख किया है–

सागर के पितु मातकुं, नव जन किये प्रनाम।

तब तिनकों आशीष दिय, पितु माते तिहि ठाम।[6]

हाथ जोड़कर शीश झुकाकर अभिवादन करने की रीति भी प्रचलित थी। प्रवीण और सागर द्वारा शिव मंदिर में नतमस्तक होकर प्रार्थना करने, कुसुमावली और सागर के मित्रों द्वारा शिव के समक्ष सिर नमाने तथा सागर द्वारा अपने माता–पिता का नमन कर आशीर्वाद पाने का वर्णन किया गया है–

जाकर शंकर मंदिर अंदर, शीश नमाइ महा मुद लीनो।[7]

X X X X X X

षट मित्र रु कुसुमावली, शंकर.... नेह धरीकें शीश निज, विनयसहीत नमाय ।[8]

X X X X X X

सागर पितु माताको नये, आशिश तब उनहीने दिये॥[9]

X X X X X X

बिरद बोलि भमिपाल प्रति, करी अरज करजोर।[10]

---

1. प्रवीणसागर – संपा. गणपतिशंकर शास्त्री, लहर 24/6
2. वही – लहर 24/7
3. वही – लहर 14/7
4. वही – लहर 16/4
5. दादूदयाल ग्रंथावली – संपा. परशुराम चतुर्वेदी – साच कौ अंग – 28
6. प्रवीणसागर, संपा. गणपतिशंकर शास्त्री, लहर 83/26
7. वही – लहर - 83/24
8. वही – लहर - 83/25
9. वही – लहर - 83/23
10. वही – लहर - 13/23

सलाम भरने, नत मस्तक खड़े रहकर मान देने आदि अभिवादन सम्मान देने की प्रथा के प्रचलन का भी तत्कालीन कवियों ने वर्णन किया है।[1] आदर सत्कार एवम् मान-सम्मान देने का शिष्टाचार भी मध्यकालीन समाज में व्याप्त था। तत्कालीन समय में कविराज का सम्मान करने की विशेष प्रणाली प्रचलित थी, कविराज के आगमन की खबर सुनते ही राजा अपने सिंहासन से उठकर उनकी अगवानी करते थे -

गुनगहीर कविराज, आप मिलवे कजे आवत।
सागर उचार इतनो सुनत, चार पैंड आगे चले।
मरजाद यथा सनमान करि, महाराज सू कवि मिले।[2]
X X X X X
कवि की मति वत दान, शूर सनमान सदाहीं।[3]

क्षेमकुशल पूछना विनम्रता प्रदर्शन के महत्वपूर्ण साधन हैं। शिष्टाचार के इस रुप के अन्तर्गत क्षेमकुशल पूछने के बाद ही अपनी बात कहने का अवसर आता था। 'प्रवीणसागर' में सागर के मित्रों द्वारा कुसुमावली की, उसके घर के सदस्यों की, महाराज तथा ग्राम-जनों की क्षेम-कुशल पूछने का उल्लेख मिलता है-

तब एक बोले मन्द, हसिकें, कुशल हो तुम अंगमे।
... महिपाल आदिक कुशल हे सब, लोक येही गामके।
पुनि कुशलहे तन कुसुम के अरु, सर्व उनके धामके।।
... असीस हमारी कीजियो.... रबबर येंही दीजियो।।[4]

वर्तमान समय में भी इसी प्रकार की रीति प्रचलित है। हम भी बाहर से आये स्वजन से उनके घर के सदस्यों से लेकर गाँव की स्थिति की पृच्छा करते हैं और सभी के विषय में क्षेम-कुशल सुनकर हमारे मन में अतिव आनंद छा जाता है। आनंद के अवसर पर पुरस्कार प्रदान करने का शिष्टाचार भी निभाया जाता था।

राजद्वार पत्र सु दिये। संग्रामसेन मन मोद भरि, पायक गजनायक किये।[5] 15 - 11

मान, सम्मान देने में किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं रखा जाता था। नृत्यगान करनेवाली वारांगनाओं को भी महाराज की तरफ से मानपूर्वक अधिक दिन ठहरने तथा पुरस्कार देने का उल्लेख 'प्रवीणसागर' में मिलता है-

शासन जी महाराज मंगाई। रीझ प्रमाण इनाम सु दीन्हो,[6]

---

1. प्रवीणसागर - संपा. गणपतिशंकर शास्त्री, लहर-14/10,26,30
2. वही - लहर- 13/27
3. वही - लहर- 8/7,- 11/7
4. वही - लहर- 82/24
5. वही - लहर- 15/11
6. वही - लहर- 17/6

मध्यकाल के उत्तरार्द्ध तक फिरंगीओं का आगमन हो गया था और वे वहाँ के प्रजाजनों से परिचित हो गये थे। 'प्रवीणसागर' में इसीलिए फिरंगी डॉक्टर के वेश में सागर द्वारा प्रवीण का उपचार करने का वर्णन किया गया है, वह महाराज को अपनी टोपी ऊँची करके अभिवादन करते हैं, जो पाश्चात्य शिष्टाचार का परिचायक है-

गये जहाँ राजत हैं महाराज, कियो सन्मान उचें करताज।[1]

अतिथि-सत्कार : जिसके आने की कोई तिथि निश्चित न हो उसे अतिथि या अभ्यागत कहते हैं। अतिथि-सत्कार का माहात्म्य परम्परा से स्वीकृत रहा है। 'अतिथिदेवोभव' की सुप्रसिद्ध उक्ति के अनुसार वह देवतुल्य पूज्य माना गया है।

अतिथि को देवतुल्य पूज्य मानने की मान्यता मध्यकाल में भी थी इसका पता अखा के काव्य से चलता है। सभ्रांत परिवारों में अतिथि का सत्कार उनके पैर दूध से धोकर किया जाता था-

मेरा ढोलन ढलकर आया रे!
हूँ दूधे धोवूँगी पाया रे![2]

आगे भी अतिथि-सत्कार सम्बन्धी इन शिष्टाचारों की मनोरम व्यंजना हुई है। आये हुए मेहमान को मानपूर्वक-आग्रहपूर्वक रखना तथा आतिथ्य को स्वीकार करने वाले को मान देकर उसकी प्रशंसा करना तत्कालीन समय का प्रचलन था-

नीतिपाल मनहार करि, रखे दिवस दसबीस।[3]
X X X X X
नीतिपाल मनुहार, सरस रससागर मानी।
सागर की जु सयान, नीतिपालादि बखानी ॥[4]

एक अन्य वर्णन में संग्रामसेन बारात को विदा करने के लिए उसके साथ थोड़ी दूर तक जाने का उल्लेख है, तो अन्य वर्णन में अतिथि के स्वागतार्थ मार्ग में ही जा मिलने का उल्लेख किया गया है -

लीन्हों विदा मास मानी मनुहार... इक ढै मुकाम निज संग चलि, वर बरात विधा सुदिय ॥[5]
X X X X X
चार पैंड आगे चले।.... महाराज सु कवि मिले ॥[6]

कच्छ के राजा लखपतसिंह के राज में परदेशियों को बहुमान सम्मान दिया जाता था।।[7]

---

1. प्रवीणसागर - संपा. गणपतिशंकर शास्त्री, लहर 31/20
2. अक्षयरस - संपा. डॉ. कुँअर चन्द्रप्रकाशसिंह, जकड़ी-10
3. प्रवीणसागर - संपा. गणपतिशंकर शास्त्री, लहर 11/19
4. वही - लहर 14/19
5. वही - लहर 16/5,6
6. वही -लहर 13/27
7. कारा डुंगर कच्छजा - अनुवाद : वसंतराय पट्टणी, पृ. 135

निष्कर्ष :

भारतीय संस्कृति में परिवार एक ऐसी सशक्त इकाई है, जिसके प्रभामण्डल से अपने आपको एकाएक अलग कर पाना प्रायः असम्भव है। मध्यकालीन समाज में भी पूर्ववत् परिवारों में घर का मुखिया पिता हुआ करता था , उनकी आज्ञा का पालन सर्वोपरि था। जबकि राजन्य संस्कृति में राजा की आज्ञा परिवार के मुखिया के रुप में कम, राजा के रुप में अधिक मानी जाती थी। राजा से कोई भी कार्य की अनुमति लेने के लिए मंत्री का सहारा लिया जाता था, उसके सहारे राजा की आज्ञा मिलती थी। महत्कार्यों के लिए पिता की आज्ञा माता के सहारे ली जाती थी, कुछ खास बातों में पहले माता की मौन-स्वीकृति, आशीर्वाद के रुप में आवश्यक थी। माँ की माँ को आज की ही तरह नानी कहा जाता था। अन्य पारिवारिक सम्बन्धों में भाभी-भाई, मौसी, काका, बहन, फूफा आदि का उल्लेख हुआ है।

पति-पत्नि के सम्बन्ध का सर्वाधिक महत्व परिवार में स्वीकारा जाता था। दोनों की एक-दुसरे के प्रति निष्ठा को आवश्यक बताया गया है और पति के प्रति पूर्ण निष्ठा उसकी अर्धांगिनी बनके जीवन को समर्पण करनेवाली स्त्रियों का परिचय भी दिया गया है। दूसरी तरफ सन्त कवियों ने इस रिश्ते की असीमित स्वतन्त्रता को लक्ष्य करके स्त्री-पुरुष दोनों को चेताया है। और आर्थिक दौड़ में नैतिकता का पतन और ह्रास होते देखा जा सकता है। इसी कारण सन्त कवियों ने ऐसे सम्बन्धों की निस्सारता का वर्णन किया है। सम्बन्धों की व्यर्थता को घोषित करके सिर्फ स्वार्थ का राज बताया है।

संतानों की हठवादिता के सामने माता-पिता के झुक जाने के उदाहरण भी प्राप्त होते हैं। तत्कालीन समय में व्याप्त सामाजिक उच्छृंखलता के दर्शन भी अन्य स्त्रियों के साथ अनौरस संबंध से व्यक्त होते हैं। जो तत्कालीन समय की एक गंभीर समस्या थी। इससे कुल की लाज को हानि पहुँचने की संभावनाओं कों भी चित्रित किया गया है।

संस्कारों के वर्णन में परंपराओं का निर्वाह अधिक देखने को मिलता है। पुत्र-जन्म संस्कार में परिवार में असीम हर्षोल्लास का वर्णन है। सारी भूमि पुलकित हो उठती है। नगर को सजाया जाता है, दान-पाकर नृत्य-गान, मंगलजान होता है। सबसे पहला काम पुत्र जन्म के बाद ज्योतिषी को बुलाकर उसकी जन्म-कुंडली बनाकर भविष्य पूछना और इस कार्य के बदले बहुत दान पाने का उल्लेख मिलताहै। नामकरण संस्कार में ज्योतिष द्वारा कही गयी राशि में नाम न रखकर पिता उसका नाम अपनी इच्छानुसार रखते थे। कर्णविध संस्कार के अन्तर्गत पुरुषों द्वारा भी कानों में आभूषण पहनने के निर्देश मिलते हैं।

वस्तुतः आलोच्यकाल का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पारिवारिक उत्सव विवाह-संस्कार था। विवाह के पहले सगाई की जाती थी। तत्कालीन समय में 12 से 13 साल की आयु में विवाह कराने की बात से स्पष्ट है कि बाल-विवाह का प्रचलन था। विवाह में संतानों की राय नहीं ली जाती थी। क्षत्रिय कन्याओं के वर-निर्धारण में कुल-पुरोहित का प्रमुख हाथ रहता था। उनके इस कार्य के लिए दान-दक्षिणा तथा सम्पूर्ण सुविधाएँ दी जाती थीं। शुभ मुहुर्त देखकर ब्राह्मण के हाथ लग्न पत्रिका भिजवाने से विवाह संस्कार की शुरुआत होती थी। बाद में गणपति पूजन होता था। कन्या-पक्षवालों द्वारा बारात की अगवानी करके ले जाने के बाद बारात को जनवासे में पहुँचाकर कुछ खास महेमानों के साथ बारात नगर में प्रवेश करती थी। मंडप में आरती उतारकर बाद में पुरोहित द्वारा स्वस्ति वाचन का आरम्भ होता था। बाद में मंत्रों द्वारा पाणि-ग्रहण करके गठबंधन करवाके अग्नि की स्थापना कर गृहसुत्र के अनुसार आहुतियाँ अर्पण की जाती थीं। मंगलफेरे, और सौभाग्यवती स्त्रियों द्वारा न्यौछावर के बाद गणेशपूजन, गोत्र कुल-देवी पूजन से विवाह विधि सम्पन्न की जाती थी। दूसरे दिन दान दिया जाता था। बारात को काफी समय रोक बाद में दहेज देकर विदा किया जाता था।बारात की वापसी से नगर में हर्षोल्लास का वातावरण छा जाता था।

बहु-विवाह प्रथा का व्यापक प्रचलन था, क्षत्रिया राजाओं की अनेकों पत्नियाँ होने के साथ-साथ रखैल रखने का वर्णन भी किया है, जिससे सामाजिक प्रतिष्ठा समझी जाती होगी।

अन्तयेष्टि-संस्कार के समय आजकल जैसे ही आचारों का प्रचलन था। सन्त कवियों ने मृतक को जलाने और दफनाने की विधि का उल्लेख किया है। वैसे तो आधुनिकता के कारण प्रायः रीति-रिवाज विलुप्त होते जा रहे हैं परंतु जन्म, विवाह और मृत्यु के संस्कारों में आज भी प्राचीन परिपाटी का अनुकरण किया जा रहा है।

पर्वोत्सवों की विवेचना से स्पष्ट है कि सभी प्रकार के त्यौहारों को मनाया जाता था, विशेष कर जिससे धार्मिकता जुड़ी हुई है। मंदिरों में फूलमंडली का आयोजन होता था। प्राचीन झूला झूलने की परम्परा भी हिंडोरे के रुप में व्यक्त हुई है। इसमें लोक-जीवन की झलक के दर्शन होते हैं। रास में असीम उत्साह का आनंद पाने का वर्णन है। प्रबोधिनी एकादशी को व्रत के रुप में मनाया जाता था। रथयात्रा का भी प्रचलन था। अखातीज को ग्रीष्म की उष्णता को दूर करने शीतलता पहुँचाने वाले द्रव्यों के उपयोग से मनाया जाता था। गणगौर कुँवारी कन्याओं द्वारा मनाया जानेवाला प्रसिद्ध पर्व था। रक्षाबन्धन के दिन

ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा दिये जाने का वर्णन है। दशहरा के दिन जवारे धारण करने का उल्लेख मिलता है। साथ में शमीवृक्ष के पूजन का प्रचलन भी व्याप्त था। दीपावली का त्यौहार धामधूम से मनाया जाता था, लोगों द्वारा नये वस्त्र पहनने, दिपक जलाने आदि का वर्णन हुआ है। गोवर्द्धन-पूजा के विधान का भी वर्णन है। होली के उत्सव का बड़े विस्तार से उल्लेख मिलता है।दो दलों द्वारा होली खेलने, आँखों को बचाकर रंग डालने आदि होली खेलने की रीति पर प्रकाश पड़ता है। गुजरात का प्रसिद्ध गरबा-रास भी पूर्ण उल्लास और उमंग से मनाया जाता था। शिवरात्रि के दिन शिव-पूजा का माहात्म्य भी बताया गया है।

विवेच्यकाल में अभिवादन की विशिष्ट प्रणालियों का चित्रण भी हुआ है। पूज्य व्यक्तियों को चरण-स्पर्श करके अभिवादन किया जाता था, जिसमें माता-पिता, गुरु, आदि के लिए यह रीति थी.। अन्य रीतियों में हाथ जोड़ना, प्रणाम करना, वंदन आदि की रीतियाँ प्रचलित थीं। इन अभिवादनों के फलस्वरुप गुरुजनों से आशीर्वाद भी मिलते थे, तो राजाओं के आगमन पर उन्हें नत-मस्तक होकर मान देना, सैनिकों द्वारा सलामी भरना आदि का प्रचलन था। आदर-सत्कार के रुप में कविजन को राजा की ओर से बहुत मान-सम्मान मिलता था। शिष्टाचार की रीति के स्वरुप राजवर्ग के लोग जहाँ जाते थे, वह जगह खाली कर उनको मान दिया जाता था। पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव स्वरुप टोपी ऊँची करके अभिवादन करने की रीति भी प्रचलित थी।

अतिथि-सत्कार की भव्य-प्रणालियों का प्रचलन था। यदि अतिथि के आगमन का पूर्वाभास हो जाता था, तो उससे मार्ग में ही आगे बढ़कर मिलने की चेष्टा की जाती थी, तथा उसे उपहार प्रदान किये जाते थे। आये हुए अतिथि को मानपूर्वक रखकर जाते समय विदा करने के लिए उसके साथ थोड़ी दूर तक जाने की प्रथा थी जिनका वर्णन मध्यकालीन कवियों ने यथास्थान किया है। सामाजिक रीति-नीति और पारिवारिक शिष्टाचार पारम्परिक रुप से पीढ़ी-दर-पीढ़ी अंतरित होते रहते हैं और उनमें अचानक कोई परिवर्तन नहीं होता और ये सभी जन-जीव में इस प्रकार रचे-बसे होते हैं कि जन-सामान्य का चितेरा साहित्यकार उनका चित्रण भी अवश्य करता है। गुजरात में मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में पारिवारिक जीवन भलीभाँति रुपायित हुआ है।